तन्त्र, मन्त्र और यन्त्र

उपरोक्त स्तम्भ के सम्बन्ध में बात करने से पूर्व – आप सब लोगों को यह बता देना आवश्यक है कि इसे सिद्ध साधक किस रूप में ग्रहण करता है, समाज किस रूप में लेता है या उसे किस रूप में लेने के लिए लोगों द्वारा दिशा निर्देश दिया जाता है।

वास्तविकता यह है कि इस विषय (तन्त्र, मन्त्र और यन्त्र) को लेकर सभ्य और असभ्य समाज में तरह – तरह की भ्रांतियां और अविश्वास व्याप्त है। इस तरह की भ्रांतियों को फैलाने में अधकचरे साधकों और तान्त्रिकों या धन और क्षणिक प्रसिद्धि प्राप्त करने के भ्रम में अपरिपक्व साधकों का जितना योगदान है उतना ही उस आधे – अधूरे भ्रांतियुक्त संदेश को जनता तक पहुंचाने में संदेश वाहक (समाचार पत्र और दूर दर्शन आदि) का भी योगदान है। लेकिन संदेश वाहक क्या करे; उसको तो यह निर्णय भीड़ के आधार पर लेना पड़ता है।

यह सच है कि इस विषय की वास्तविकता को गहराई से समझने और लोगों को समझाने और उसके प्रायोगिक रूप को बताने वाले साधकों और तान्त्रिकों की कमी है लेकिन इसके साथ – साथ इस यथार्थ को भी नहीं नकारा जा सकता कि इसकी सच्चाई और उपयोगिता को जनमानस तक पहुंचाने के लिए उनके पास न तो कोई भौतिक त्वरित साधन है और न ही वे उसके लिए विशेष प्रयत्नशील रहते हैं।

इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि जब चिकित्सा – योग और अन्य शिक्षाप्रद योजनाएं जो इस स्तम्भ से परोक्ष में आंशिक सम्बन्ध रखते हुए जनमानस के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है तो आध्यात्मिकता से आच्छादित 'तन्त्र, मन्त्र और यन्त्र' समाज के लिए भ्रांतियुक्त और अनुपयोगी कैसे होगा? – यह विचारणीय प्रश्न है।

सच कहा जाय तो यह 'तन्त्र, मन्त्र और यन्त्र' प्रकृति (सृष्टि) के लगभग हर वर्ग को असम्भव से सम्भव बनाने में अपना योगदान सहयोग के रूप में दे सकता है लेकिन समयबद्धता के अन्तर्गत नहीं। क्योंकि 'तन्त्र' का 'नियमित – अनियमित' स्वसंचालन किसी भी सृष्टि के आरम्भ से ही होने लगता है।

बहुत से ऐसे कार्य हैं जो 'तन्त्र' के नियमित सहयोग के बिना पूर्ण नहीं हो सकते। यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य अदृश्य बाधाओं से ग्रसित है तो उसकी बीमारी या अन्य शारीरिक समस्याओं का निदान चिकित्सा या योग या व्यवस्था के विविध उपायों आदि से पूरी तरह कैसे निर्मूल (मुक्त) हो पायेगा ? इसी तरह भवन या कल – कारखाने के निर्माण से पूर्व उस स्थल के भूमि का शोधन आदि भी ज्योतिष या कर्मकाण्ड आदि से न होकर 'तन्त्र' की सहायता से सम्भव हो पायेगा।

इस तरह प्रकृति के गर्भ में बहुत सी ऐसी अदृश्य समस्याएं हैं जो उपरोक्त स्तम्भ के माध्यम से यथासम्भव हल की जा सकती हैं।

यहां पर हम समाज के तमाम समस्यायुक्तों और भ्रमित लोगों को ध्यान में रखते हुए सबसे पहले स्तम्भ (तन्त्र, मन्त्र और यन्त्र आदि) की संक्षिप्त विवेचना

करना आवश्यक समझते हैं। उसके उपरान्त संक्षेप में एक ऐसी रूपरेखा बनाएंगे जो लोगों की तमाम सारी ऐसी समस्याओं को जो भौतिकता के अन्तर्गत नहीं हल हो सकती; उसके लिए वह एक सफल और सशक्त रस्ता (विधा) सिद्ध हो सकता है। हां; उस संक्षिप्त रस्तों (विधाओं) का विस्तार इस स्तम्भ के माध्यम से समय – समय पर लोगों के लिए संदेश वाहक (समाचार पत्र या दूर दर्शन आदि) द्वारा प्रसारित किया जा सकता है जो निःसंदेह उन सब समस्यायुक्तों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

उपरोक्त स्तम्भ का संक्षिप्त विवरण निम्न कम में प्रस्तुत किया जा सकता है–

1. तन्त्र – तन्त्र का मूलस्रोत मन्त्र हो; यह आवश्यक नहीं है। तन्त्र एक व्यवस्था है। आध्यात्मिक व्यवस्था को तन्त्र से नियंत्रित और व्यवस्थित किया जाता है। मानव के शारीरिक व्यवस्था के अन्तर्गत, तन्त्र को निम्न कम में व्याख्यायित किया जा सकता है–

'मानव शरीर के सूक्ष्म तन्तुओं के संकुचन या विस्तार को तन्त्र कहा जा सकता है।'

सामान्यतः 'शक्ति पूजा, मुद्राएं, मन्त्र, यन्त्र, मण्डल, पंच मकार, दक्षिण मार्ग, वाम मार्ग और ऐन्द्रजालिक क्रियाएं आदि' को लोग (साधक) तन्त्र से जोड़ते हैं। क्योंकि इनके द्वारा अलौकिक शक्तियां प्राप्त की जाती है।

तन्त्र साहित्य के अर्थ में प्रयुक्त 'तन्त्र' शब्द का प्रयोग कब प्रचलित हुआ, यह विवादस्पद है।

'तन्त्रशास्त्र का 'हृदय और अन्तर्भाग' मन्त्र है। सामान्य कम में तन्त्रशास्त्र को मन्त्रशास्त्र भी कहा जाता है।'

'तन्त्र' शब्द बहुधा 'तन' और 'त्रौं' धातुओं से निष्पन्न माना जाता है। यह बहुत से विषयों (जिसमें 'तत्व' और 'मन्त्र' आदि भी हैं) को विस्तारित और संवर्द्धित करता है। अतः इसे तन्त्र कहा जाता है।

'तन्त्र' सम्बन्धी विषय की जटिलता और गम्भीरता को सरल करने के उद्देश्य से संक्षेप में पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष के कतिपय विशिष्ट साधकों, तान्त्रिकों और धर्माचार्यों के मतों – सिद्धान्तों का यहां उल्लेख कर देना आवश्यक है।

'रुद्रयामल' में अथर्ववेद की प्रशस्ति आयी है कि – उसमें सभी देवों, सभी प्राणियों (स्थल, चर, जलधर और नभचर आदि), सभी ऋषियों, कामविद्या और महाविद्या का निवास है।

बुद्ध ने सिद्धि प्राप्त करने के लिए वसिष्ठ को कौलमार्ग और योग के प्रयोगों में शिक्षित किया और उन्हें पूर्ण योगी होने की साधना के लिए पंचमकारों के उपयोग का निर्देश दिया।

ऋग्वेद के अनुसार – जिस प्रकार 'देवी' या 'शक्ति' पंचात्कालीन साहित्य में 'शिव' से सम्बन्धित है, उसी प्रकार इन्द्राणी, वरुणानी,अग्नामी, रोदसी कम से इन्द्र, वरुण, अग्नि और मरुतों से उनकी पत्नियों के रूप में सम्बन्धित हैं।

देवशंकर ने निम्न पांच तत्व घोषित किये हैं – 'मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन । अतः व्यक्ति (साधक) को चाहिए कि वह कुलाचारों में रत् हो, जिसके द्वारा वह व्यक्ति साधना करता है। मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन ; ये

शक्ति पूजा के पांच तत्व कहे गये हैं। 'मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन' से की गयी पूजा को ही कुलाचार कहा जाता है।

'परानन्दसूत्र' के अनुसार – 'परमात्मा एक, ईश्वर सात (ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश, शक्ति और भैरव आदि), जीव असंख्य और मार्ग तीन (दक्षिण, वाम और उत्तर) हैं।'

'महानिर्वाण तन्त्र' ने पंचमकारों (मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन आदि) को साधना का प्रमुख तत्व माना है। उसमें यहां तक आया है कि – इस तन्त्र को समझने वाले व्यक्ति (साधक) के लिए वेद, पुराण शास्त्र आदि का ज्ञान व्यर्थ है। उसी क्रम में उसने यह भी कहा है कि – '¬ सच्चिदेकं 'ब्रह्म'' सर्वोच्च मन्त्र है।

'महानिर्वाण तन्त्र' (अध्याय – 4) आरम्भ में यह कहता है कि – 'दुर्गा परमात्मा की परम प्रकृति हैं। इनके अनेक नाम (काली, तारा, छिन्नमस्ता, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, धूमावती, बगलामुखी, मातंगी और कमला आदि) हैं। कलयुग में कुलाचारों के अनुसरण किये बिना व्यक्ति (साधक) पूर्णता नहीं प्राप्त कर सकता। क्योंकि कुल के आचारों से साधक को 'ब्रह्मज्ञान' प्राप्त होता है और ब्रह्मज्ञानी जीवन मुक्त होता है।

इसी कम में दस अक्षर वाला मन्त्र (ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरी स्वाहा) आया है। यह अति प्रभावशाली मन्त्र है। लेकिन इस मन्त्र की साधना में पंचमकार और कुलाचार पद्धति का होना आवश्यक है। इसके उपरान्त गायत्री मन्त्र (आद्यायै विद्यमहे परमेश्वर्यै धीमहि तन्त्रः काली प्रचोदयात्) की तीन आवृत्ति आवश्यक है।

मानव शरीर में 6 चक्र (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा आदि) होते हैं। मस्तिष्क के अन्तः में सहस्रदल के बीज के रूप में 'ब्रह्मरन्ध्र' होते है। 'शारदातिलक' ने साधक से कुण्डलिनी पर ध्यान करने की बात कही है। योग और तन्त्र की यह परिकल्पनाएं प्राचीन उपनिषद् सम्बन्धी सिद्धान्तों के विकास मात्र हैं।

'शक्तिसंगमतन्त्र' में आया है कि – अधर्मियों के नाश, विभिन्न सम्प्रदायों के विरोधाभाष को दूर करने, सच्चे सिद्धान्त की स्थापना, ब्राह्मणों की रक्षा तथा मन्त्रशास्त्र की सिद्धि आदि के लिए देवी आविर्भूत होती हैं।

'गुह्यसमाजतन्त्र' ने कई प्रकार के मांसों (हाथी, घोड़ा, कुत्ता और मानव मांस आदि) के प्रयोग की अनुमति दे रखी है। 'वज्रयान' ने बौद्धों को पशु हत्या, मिथ्या भाषण, स्त्रियों के साथ संभोग (मां, बहन और पुत्री आदि) और परद्रव्यहरण आदि की अनुमति दे दी। यह 'वज्रमार्ग' बौद्धों के लिए सिद्धान्त – सा घोषित था।

'गुह्यसमाजतन्त्र' ने योग की कियाओं द्वारा बुद्धत्व और सिद्धि की प्राप्ति के लिए लघु और क्षिप्रकारी विधि बतायी है। इसने छह कर्मो (शान्ति, वशी करण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन और मारण आदि) का उल्लेख कम से किया है।

'अद्वयसिद्धि' में आया है कि तीनों लोकों में आचार्य से बढ़कर अन्य कोई नहीं है। लक्ष्मीड़करा ने यहां तक कहा है कि – अपने शरीर की पूजा करनी चाहिए, क्योंकि इसमें सभी देवों का निवास रहता है।

'नीलपटदर्शन' में आया है कि – कामदेव, वेश्या और मदिरा; यह तीनों रत्न हैं। बौद्धों के तीनों रत्नों को उसके अनुयायीगण व्यर्थ मानते हैं। 'यशस्तिलकचम्पू' और क्षेमेन्द्र का 'दशावतारचरित' आदि ने पंचमकार युक्त साधना पर विशेष बल दिया है। उनके (गुरुओं) अनुसार – एक ही पात्र में भांति – भांति के शिल्पियों (धोबियों, जुलाहों, चर्मकारों और कापालिकों आदि) द्वारा मद्य पान, चक्रपूजा और बिना किसी विकल्प के स्त्रियों के साथ संभोग करने और उत्सवों से परिपूर्ण जीवन से मुक्ति प्राप्त होती है।

सर जान बुड़ौफ ने 'प्रिंसिपुल आव तन्त्र' में कहा है कि – मांस, मत्स्य और मदिरा आदि का प्रयोग वैदिक काल में सर्वसाधारण था। महाभारत और पुराणों (कालिका, मार्कण्डेय, कर्म आदि) में 'मांस, मत्स्य और मदिरा आदि' के सेवन की ओर संकेत हैं।

'महानिवार्णतन्त्र' ने स्पष्ट किया है कि – 'साधक पंच तत्व (मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन आदि) एकत्र करके 'आं ह्रीं कों स्वाहा' मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करे। ब्रह्म से उत्पन्न मानकर उसे भगवती काली को समर्पित करे और फिर स्वयं उसका सेवन करे।'

'शक्तिसंगमतन्त्र' (1555 – 1607 ई0) ने प्रतीकात्मक व्याख्याएं करनी आरम्भ कर दी। उनके अनुसार – 'मद्य, मुद्रा, मैथुन आदि' शब्द सामान्य अर्थ में नहीं प्रयुक्त हुए हैं। इन पंचमकारों के गूढ़ अर्थों को निम्न क्रम में समझा जा सकता है–

1. मुद्रा – 'गुड. और सिरका, नमक और खली, लहसुन और इमली आदि' के मिश्रण को 'मुद्रा' के अर्थ में लिया जा सकता है।
2. मद्य – कुण्डलिनी के जगाने के प्रयास में शक्ति की आह्लादमय अनुभूति को 'मद्य' कहा जा सकता है।
3. मत्स्य – प्राणोच्छ्वासों के अवदमन को 'मत्स्य' कह सकते हैं।
4. मांस – मौन व्रत आदि को 'मांस' कह सकते हैं।
5. मैथुन – 'सृष्टि और विनाश' के कर्मों पर ध्यान को 'मैथुन' कहा जा सकता है।

कुछ तन्त्रों के अनुसार – व्यक्ति (साधक) के तामसिक, राजसिक या सात्विक होने पर इन पंचतत्वों का अर्थ बदल जाता है।

कौलरहस्य के अनुसार – उन दिनों 'आं ह्रीं कों' मन्त्र के पाठ और ' ऊँ आनन्द भैरवाय नमः' तथा ' ऊँ आनन्द भैरव्यै नमः' के जप से मद्य, मांस और मुद्रा आदि के द्रव्य की शुद्धि की जाती थी। 'महानिर्वाण' और 'तन्त्रराजतन्त्र' में आया है कि – शुद्धि के बिना मद्य सेवन, विष सेवन के समान है। उन दिनों 'चक्रपूजा' का भी प्रचलन था। जो अति गोपनीय रहा है।

'कौलावलिनिर्णय' में पंचमकारों की श्रेष्ठता को विधिवत पारिभाषित किया गया है। उनके अनुसार – 'प्रथम तत्व (मद्य) का सेवन करने वाला शाक्त साधक 'भैरव', दूसरे तत्व (मांस) का सेवन करने वाला 'ब्रह्मा', तीसरे तत्व (मत्स्य) का सेवन करने वाला 'महाभैरव', चौथे तत्व (मुद्रा) से साधकों में श्रेष्ठ होता है। अन्तिम तत्व (मैथुन) से वह सिद्ध हो सकता है।

'कालीविलासतन्त्र' ने शाक्त साधक को परनारी के साथ संभोग की अनुमति दी है, लेकिन विर्यपात की नहीं। इस कम में वह सर्वसिद्धीश्वर हो सकता है। कुछ पुराणों (देवीपुराण, कालिका और देवीमहात्म्य आदि) में देवी पूजा में 'पंचमकारों' की चर्चा की गयी है।

'कालिकापुराण' के कई अध्यायों में मन्त्रों, कवचों, मुद्राओं और न्यासों आदि का उल्लेख है। कुछ पुराणों ने तान्त्रिकों के मन्त्रों, जप, न्यास, मण्डल, चक्र, यन्त्र आदि का उपयोग किया है।

पुराणों और कतिपय स्मृतियों आदि ने अधिकांश उद्देश्यों की पूर्ति के लिए '5, 6, 8, 12, 13' और अधिक अक्षरों के मन्त्रों की व्यवस्था की है।

सभी मन्त्र (सम्भवतः लगभग 9 करोड़) वर्णमाला के वर्णों से विकसित हुए हैं। तान्त्रिक साधक वर्णों को जीवित स्वर शक्तियां मानते हैं।

तान्त्रिक ग्रंथों के अनुसार 'मन्त्र शक्ति' की 'स्वर देह' है जो मन्त्र के मूल तान्त्रिक द्रष्टा की व्यक्तिता से निः सृत स्वर स्फुरणों से विद्ध होती है और तान्त्रिक ऋषि द्वारा प्रदत्त शक्ति के अमोघ भण्डार से युक्त होती है। देवता, मन्त्र और गुरु आदि तीनों साधना के लिए आवश्यक हैं।

तान्त्रिक ग्रंथों के अपने मन्त्र हैं और वह वैदिक मन्त्रों का भी प्रयोग करते हैं। 'महानिर्वाण' के अनुसार तान्त्रिक गायत्री का शाब्दिक स्वरूप निम्न हो सकता है—

'आद्यायै विद्यमहे परमेश्वर्यै धीमहि तन्त्रः काली प्रचोदयात्।'

'महानिर्वाण' के अनुसार करोड़ों मन्त्र और तन्त्रों में जितने मन्त्र हैं वह सब महादेवी के मन्त्र हैं।

'शारदातिलक' ने मन्त्रों को पुरुष, स्त्री और नपुसंक रूप में बांट दिया है। पुरुष, स्त्री और नपुसंकवाची मन्त्रों का अन्त 'हुं, फट्', 'स्वाहा' और 'नमः' से कमशः हुआ है।

वैदिक और तान्त्रिक मन्त्रों का कमिकजप, पुरश्चरण कहलाता है। राघवभट्ट ने 'शारदातिलक' (16 /126) के भाष्य में सभी मन्त्रों में प्रयुक्त होने वाले 'पुरश्चरण' का उल्लेख किया है। उन्होंने यह भी कहा है कि – यदि साधक देवता रूपी अपने गुरु को संतुष्ट कर देता है तो उसे पुरश्चरण के बिना भी सिद्धि प्राप्त हो सकती है।

'योगसूत्राभास्य' में आठ सिद्धियों (अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व, ईशित्व और यत्रा कामा वसायित्व आदि) का उल्लेख हुआ है। जिसको यह आठों सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं, वह सिद्ध साधक कहलाता है।

'साधनमाला' के अनुसार – 'खड्ग, भंजन, पादलेप, अन्तधनि, रस रसायन, खेचर, भूचर और पाताल सिद्धि आदि' आठ सिद्धियां हैं।

'महानिर्वाणतन्त्र' के अनुसार – जब शिष्य 'शाक्त, शैव, वैष्णव, सौर या गाड़पत्य' हो तो गुरु को उसी सम्प्रदाय का होना चाहिए, किन्तु कौल सभी के लिए अच्छा गुरु है।

2. मन्त्र – मन्त्र के शाब्दिक अर्थ और भावनात्मक अर्थ में अन्तर होता है। दोनों अर्थों के समझने के उपरान्त, साधक को चाहिए कि वह उसके आध्यात्मिक तारतम्य को भी समझने का प्रयास करे।

मन्त्रों के शाब्दिक अर्थ को मन्त्रार्थ कहा जा सकता है। मन्त्रार्थ साधक का ज्ञानवर्द्धन कर सकता है लेकिन भावार्थ उसकी साधना में गतिशीलता प्रदान कर सकता है। इसलिए साधक (साधिका) को मन्त्रार्थ और भावार्थ के मध्य सेतु निर्मित करके साधनारत् होना चाहिए।

इस गुह्य रहस्य को समझने के लिए मन्त्रों के शाब्दिक और भावनात्मक अर्थों को विवेचित करने के उपरान्त उनकी तान्त्रिक क्षमता का यथासम्भव मूल्यांकन किया जा सकता है।

3. **यन्त्र और चक्र** – यह तन्त्र पूजा का एक अन्य विशिष्ट विषय है। कभी – कभी यन्त्र और चक्र में समानता सी दीखती है। इसका उल्लेख कुछ पुराणों में भी हुआ है। यह मण्डल से मिलता जुलता है। मण्डल का उपयोग किसी देवता की पूजा में होता है, लेकिन यन्त्र का उपयोग किसी विशिष्ट देवता की पूजा या किसी विशिष्ट उद्‌देश्य के लिए होता है। 'कुलार्णवतन्त्र' के अनुसार – 'यन्त्र का विकास मन्त्र से हुआ है। इसे मन्त्र रूपी देवता कहा गया है। यन्त्र पर पूजित देवता तत्क्षण प्रसन्न होकर साधक के कष्टों को दूर करता है; अतः इसे यन्त्र कहा जाता है। यदि यन्त्रों में परमात्मा पूजित हों तो वह शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं।' तन्त्र में आया है कि – यदि पूजा यन्त्र के बिना की जाय तो देवता प्रसन्न नहीं होता। 'यन्त्र' शब्द 'यन्त्र्' धातु से निकला कहा गया है। 'राम पूर्वतायनी उपनिषद्' में आया है कि – 'यन्त्र की व्यवस्था देवता का शरीर है जो सुरक्षा प्रदान करता है। 'कौलवलीनिर्णय' के अनुसार – 'बिना यन्त्र के देवता की पूजा, बिना मांस के तर्पण,बिना शक्ति (साधिका – साधक) के मद्यपान – यह सभी निष्फल होते हैं।' कुछ ग्रंथों ने 'यन्त्र गायत्री' की भी परिकल्पना कर डाली है।

उपरोक्त क्रम के अनुसार – 'यन्त्र वह तन्त्र है जिसके द्वारा क्रोध, प्रेम आदि के कारण दोलायमान मन की गतियों पर नियंत्राण किया जा सकता है और मन को उस चित्र आकार पर लगाया जा सकता है जिसमें देवता को प्रतिष्ठापित किया गया रहता है। इससे मनोयोग होता है और देवता की मानसिक प्रत्यभिज्ञा भी होती है। अन्ततः देवता और यन्त्र में अन्तर वही है जो आत्मा और भौतिक शरीर में होता है।'

'तन्त्र, मन्त्र और यन्त्र' के अतिरिक्त तान्त्रिक क्रिया को सम्पादित करने में अन्य उपक्रम (न्यास, मुद्रा और मण्डल आदि) भी आवश्यक है। इसे निम्न क्रम में समझा जा सकता है –

4. न्यास – तान्त्रिक कृत्यों में 'न्यास' एक महत्वपूर्ण अंग है। शरीर के क्रियाशील बाह्य अंगों पर अवस्थित होने के लिए देवी / देवताओं, मन्त्रों आदि का मानसिक रूप से आह्वान करना, जिससे वह पवित्र होकर ध्यानादि करने योग्य हो जाय; यह सब न्यास के अन्तर्गत आता है।

न्यास' शब्द 'अस्' और 'नि' से बना है। 'कुलार्णव' के अनुसार – 'इसे न्यास इसलिए कहा जाता है कि वहां धर्म पूर्वक धन रखा या स्थापित होता है

और वह भी ऐसे लोगों के साथ, जिसके द्वारा सुरक्षा प्राप्त होती है। सर जान बुड्रौफ ने न्यास की तुलना 'इसाई धर्म' में कास के चिन्ह बताने से की है।

5. **मुद्रा** – यह तान्त्रिक किया का एक अति विशिष्ट विषय है। इसके विभिन्न अर्थों में चार का प्रयोग तान्त्रिक प्रयोगों से है। यह योग की कियाओं में एक आसन और धार्मिक पूजा के अंग के रूप में अंगुलियों और हाथों का प्रतीकात्मक या रहस्यवादी ढंग है। यह पंचमकारों में चौथा मकार है। इसके चौथे अर्थ में 'वह नारी जिससे तान्त्रिक योगी अपने को सम्बन्धित करता है (प्रज्ञोपाय)।

'कुलार्णव' ने इसे 'मुद' और 'द्रावय' से निष्पन्न माना है।

'शारदातिलक' ने इसे 'मुद्' और 'रा' से व्युत्पन्न माना है।

'राघव भट्ट' के अनुसार – 'अंगूठे से कनिष्ठका तक की अंगुलियां 'पंचतत्व' (आकाश, वायु, अग्नि, सलिल और पृथिवी) के समान है। इनके सम्मिलन से देवता प्रसन्न और अनुग्रहीत होते हैं। समुचित मुद्राओं का प्रयोग पूजा, जप और ध्यान आदि में होना चाहिए। मुद्राओं से पूजा करने वाले का मनोयोग बढ़ जाता है।

'वर्षकियाकौमुदी' में आया है कि – जब तक उचित मुद्राएं न हों – जप, प्राणायाम, देव पूजा, योग, ध्यान और आसन आदि फलदायक नहीं होते।

6. **मण्डल** – तान्त्रिक पूजा का एक अंग मण्डल भी है। यह मध्य और आधुनिक कालों में कट्टर हिन्दुओं द्वारा प्रयुक्त होता रहा है।

तै0 सं0 में वृत्ताकार ईंटों का उल्लेख है।

शत0 ब्रा0 में सूर्य का चक या मण्डल कहा गया है।

आपस्तम्ब और कात्यायन के शुल्ब सूत्रों में मण्डल के वर्गाकार स्वरूप की ओर संकेत किया गया है।

'मत्स्यपुराण' में कतिपय वक्तव्यों में मण्डलों की ओर संकेत है। इसमें 12 या 8 दलों वाले कमल की ओर संकेत है।

'वाराहमिहिर' ने 'वृहत्संहिता' में पुष्पस्नान नामक एक पवित्र किया का उल्लेख किया है। इसमें विभिन्न रंगों वाले चूर्णों से पवित्र भूमि पर मण्डल बनाने की ओर संकेत है।

'ब्रह्मपुराण' में कमल चित्र पर सूर्य के आवाह्न का उल्लेख है। एक अन्य स्थल पर कमल के रूप में मण्डल पर नारायण की पूजा की ओर संकेत है जिसे रघुनन्दन ने पुरुषोत्तम तत्व में उद्धत किया है।

हर्षचरित में कई रंगों से खचित एक बड़े मण्डल का उल्लेख है।

'वराहपुराण' के मण्डल में लक्ष्मी और नारायण की प्रतिमाओं या चित्रालेखनों की पूजा की चर्चा है।

'अग्निपुराण' (अध्याय 320) में आठ मण्डलों, सर्वतोभद्र आदि का उल्लेख है।

'शारदातिलक' (नवनाम मण्डल), 'ज्ञानार्णव' आदि में कई मण्डलों का वर्णन है।

'शारदातिलक' में सर्वतोभद्र के निर्माण का बृहद् उल्लेख है।

'प्रपंचसार' , 'अग्निपुराण' आदि में रंगों का विधान है।

बौद्धतन्त्रों में भी मण्डलों का प्रभूत उल्लेख है।

'मंजुश्रीमूलकल्प' में मण्डलों के आलेखन की विशिष्ट विधियों और रंगने की चर्चा की गयी है।

'गुह्यसमाजतन्त्र' में बीच में चक्र वाले, 16 हाथ के मण्डल का उल्लेख है।

'इण्डोतिब्बेत्कि' (जिल्द 4, भाग 1) में मण्डलों की तालिकायें दी हुईं हैं।

'दि गाड्स आव नार्दन बुद्धिज्म' में 9 तत्वों का एक मण्डल प्रदर्शित है।

'कण्ट्रीब्यूशंस टु दि स्टडी आव मण्डल एण्ड मुद्रा' के अन्त में लगभग 100 मुद्राओं के चित्र दिये गये हैं।

'एक्टा – ओरिऐण्टालिया' में दो तिब्बती पाण्डुलिपियों में चावल मण्डल (37 तत्व) और 123 मुद्राओं का क्रमशः उल्लेख है।

'तन्त्र, मन्त्र और यन्त्र आदि' की संक्षिप्त व्याख्या और उसके क्रम से जुड़े आवश्यक सहयोगी अंगों का आवश्यक संक्षिप्त उल्लेख करने के उपरान्त, उससे जुड़े सम्प्रदायों का निम्न क्रम में उल्लेख किया जा सकता है –

1. कौल – यह लोग आधार चक्र में पूजन करते हैं।

2. क्षपणक – यह लोग प्रत्यक्ष त्रिकोण में पूजन करते हैं। यह सम्प्रदाय दिगम्बर सम्प्रदाय की एक शाखा है।

3. कापालिक – यह लोग प्रत्यक्ष त्रिकोण तथा आधार चक्र दोनों का पूजन करते हैं।

4. दिगम्बर – यह लोग भी कापालिक के समान प्रत्यक्ष त्रिकोण तथा आधार चक्र का पूजन करते हैं।

5. इतिहासक – यह लोग भैरव यामल के अनुसार उपासना करते हैं।

6. वामक – इस सम्प्रदाय के लोग वामकेश्वर तन्त्र का अनुसरण करते हैं।

उपरोक्त सम्प्रदायों में प्रमुख रूप से दक्षिण और वाममार्ग की तान्त्रिक उपासना का प्रचलन है। दक्षिणमार्ग में मुख्यतः 'घोर साधक' साधनारत् रहते हैं और वाममार्ग में 'अघोर साधक' ।

'तन्त्र' सम्बन्धी 'त्रयी साधना' (वैष्णव, शाक्त और शैव आदि) में 'घोर साधक' सात्विक क्रम में साधना कर सकते हैं। लेकिन 'अघोर साधक' केवल ''शाक्त और शैव' से सम्बन्धित देवी – देवताओं की साधना कर सकते हैं। इन दोनों मार्गों (दक्षिण और वाममार्ग) की साधना प्रक्रिया को संक्षेप में निम्न क्रम में प्रस्तुत किया जा सकता है–

1. दक्षिण मार्ग – इस मार्ग में साधक को चाहिए कि वह त्रयी शक्तियों के किसी मन्त्र के पुरश्चरण में 'विनियोग, न्यास, ध्यान, जप और हवन आदि' क्रम से विधिवत करे। यदि वह पुरश्चरण को सार्वजनिक स्थल पर करता है तो उसे क्रम से पीठपूजा और आवरणपूजा भी कर लेनी चाहिए। 'पुरश्चरण / अनुष्ठान' से उत्पन्न शक्ति का उपयोग वह तान्त्रिक उपक्रमों में कर सकता है।

इस मार्ग के अन्तर्गत – भगवान विष्णु और उनके अवतारों से सम्बन्धित मन्त्रों, भगवान शिव से सम्बन्धित विविध मन्त्रो और शक्ति से सम्बन्धित भगवती दुर्गा और उनके दशों महविद्याओं (भगवती काली, भगवती तारा, भगवती भुवनेश्वरी, भगवती भैरवी, भगवती छिन्नमस्ता, भगवती धूमावती, भगवती वगला, भगवती मातंगी और भगवती कमला आदि) के मन्त्रों की साधना 'पुरश्चरण / अनुष्ठान' के क्रम में की जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त भगवान गणेश, भगवान हनुमान और नवग्रहों आदि से सम्बन्धित मन्त्रों की साधना की जा सकती है लेकिन तान्त्रिक उपलब्धियों के अन्तर्गत यह साधना बहुत उपयोगी नहीं है।

2. वाम मार्ग – इस मार्ग में साधक को चाहिए कि वह त्रयी शक्तियों में से 'शाक्त और शैव' से जुड़े किसी मन्त्र के पुरश्चरण में कौलाचार्य के अनुमति से 'पंचमकार' का विधिवत् सेवन करते हुए देवी – देवताओं का मन्त्रोचारण के साथ तब तक ध्यान करता रहे जब तक वह आगे के लिए दिशा – निर्देश न दे। 'पुरश्चरण / अनुष्ठान' को पूर्ण करने के उपरान्त वह स्वयं में आवेशित शक्तियों का उपयोग तान्त्रिक उपक्रमों में कर सकता है। लेकिन इस तान्त्रिक प्रक्रिया में उसके (साधक) लिए कौलाचार्य का दिशा निर्देश और उससे जुड़ी साधिका का आपेक्षित सहयोग आवश्यक है।

इस मार्ग के अन्तर्गत – भगवान शिव से सम्बन्धित विविध मन्त्रो और शक्ति से सम्बन्धित भगवती दुर्गा और उनके दशों महविद्याओं (भगवती काली, भगवती तारा, भगवती भुवनेश्वरी, भगवती भैरवी, भगवती छिन्नमस्ता, भगवती धूमावती, भगवती वगला, भगवती मातंगी आदि) के मन्त्रों की साधना 'पुरश्चरण / अनुष्ठान' के क्रम में की जा सकती हैं।

इस मार्ग की अघोर साधना में मुख्यतः भैरव और भैरवी को शिव और शक्ति के रूप में लिया जाता है।

'रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण' से सम्बन्धित साधना में वाममार्ग केवल रजोगुण और तमोगुण से जुड़ सकता है।

(विशेष – उपरोक्त साधना को 'साध्य और साधना' (खण्ड – 1, 2, 3, 4) और 'साधक, साध्य और साधना' पुस्तक में विस्तार से समझाया गया है।)

अब प्रश्न यह उठता है कि इन दोनों मार्ग (दक्षिण और वाममार्ग) से सम्बन्धित साधना में विशेष अन्तर क्या है। इसे निम्न क्रम में 'तन्त्र' के सापेक्ष में समझा जा सकता है–

1. 'पुरश्चरण / अनुष्ठान' के उपरान्त तान्त्रिक क्रियाओं से जुड़ने वाली शक्तियों की गति वाममार्ग में दक्षिणमार्ग की अपेक्षा ज्यादा होती है। कभी – कभी इन शक्तियों की गति तान्त्रिक अभिक्रियाओं के अन्तर्गत 10 गुने से 100 गुने तक हो जाती है।

लेकिन इस तीव्र गतिशीलता के कारण तान्त्रिक अभिक्रियाओं में साधक / साधिका द्वारा जो त्रुटियां हो जाती है वह सामान्यतः क्षम्य नहीं होती। विशेष प्रायश्चित के अन्तर्गत इन त्रुटियों के प्रभाव से साधक / साधिका छुटकारा पा सकते हैं।

इसलिए इस मार्ग की साधना और तान्त्रिक प्रयोंगों को बहुत ही सशक्त और सिद्ध साधकों को पूरे संयम के साथ द्वेश भावना से अलग हटकर करनी चाहिए।

2. दक्षिण मार्ग की साधना उत्पन्न शक्ति और उससे जुड़े तान्त्रिक प्रयोगों में त्राुटियों की संभावना कम होती है। इस मार्ग में साधक के साथ साधिका का भी होना आवश्यक नहीं है।

3. दोनों मार्गों (दक्षिण और वाममार्ग) से जुड़े साधक / साधिकाएं 'पंचमकार' की वैकल्पिक व्यवस्था अपनी तान्त्रिक अभिक्रियाओं में कर सकते हैं।

4. वाममार्ग के अन्तर्गत साधक / साधिकाओं से तान्त्रिक अभिक्रियाओं में जो गल्ती होती है उसमें शक्ति का ह्रास तीव्र गति से होता है।

5. समान्यतः तान्त्रिक व्यवस्था के लिए वाममार्ग ज्यादा उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

'तन्त्र, मन्त्र और यन्त्र आदि' की संक्षिप्त विवेचना और उससे जुड़े साधना कमों को संक्षेप में बताने के उपरान्त उसकी उपयोगिता पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। तान्त्रिक शक्तियो की उपयोगिता और उसके लाभ को निम्न कम में प्रस्तुत किया जा सकता है –

1. तन्त्र के सहयोग से साम्प्रदायिक सद्‌भाव को प्रगाढ़ता मिल सकती है।

2. तन्त्र से जातिगत विषमताओं को दूर किया जा सकता है।

3. तन्त्र से असाध्य रोग / व्याधि और महाव्याधि आदि पर नियंत्रण किया जा सकता है।

4. तन्त्र से आपसी वैमनस्य और अप्रत्याशित दुर्घटनाओं को टाला जा सकता है।

5. तन्त्र से भूमि आदि का शोधन और भवन निर्माण आदि में सहयोग लिया जा सकता है।

6. तन्त्र के माध्यम से मानव मस्तिष्क की आरम्भिक विकृतियों को धीरे – धीरे नष्ट किया जा सकता है।

7. विज्ञान या उससे जुड़े शोधपरक् असम्भव से दीखने वाले कार्यों के साथ यदि तान्त्रिक अभिकियाओं को उचित मार्ग द्वारा जोड़ दिया जाय तो सफलता की सम्भावना बढ़ सकती है।

8. तान्त्रिक शक्तियों को चमत्कारिक प्रक्रियाओं से अलग हटाते हुए, मानवहित में विविध ढंगकम से उसका प्रयोग किया जा सकता है। जैसे – आपसी झगड़े और कानूनी विवाद को सही ढंग से निपटाना।

9. तान्त्रिक शक्तियों को एकत्रित करके उसका सही दिशा में प्रयोग करना। तान्त्रिक शक्तियों का संग्राहक – मन्दिर, मस्जिद, गिरजा और गुरुद्वारा आदि हो सकता है।

उपरोक्त समस्याओं के अतिरिक्त अन्य उन समस्याओं को जो सामान्य भौतिक संशाधनों से हल नहीं हो पाती हैं, उन्हें समस्यामुक्त करने में तन्त्र और उससे जुड़ी शक्तियों का उपयोग किया जा सकता है। लेकिन जन मानस से जुड़े इस जटिल कार्य के लिए तन्त्र और उससे जुड़ी साधनाओं का व्यापक प्रचार – प्रसार सही ढंग से होना चाहिए।

प्रचार – प्रसार के माध्यम से सामान्य लोगों को भी इस विधा (तान्त्रिक शिक्षा) से यथासम्भव अवगत कराने का वैसा ही प्रयास होना चाहिए, जैसा कि योग विद्या और धार्मिक प्रवचनों का प्रचार – प्रसार समाचार पत्रों और दूरदर्शन के माध्यम से होता है।

0

क्रमशः